R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-9 सितम्बर 2020 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

अगस्त का E - अंक

आचार्य धरसेन और श्रुतपञ्चमी महापर्व

भगवान महावीर के पश्चात् ५०० वर्ष तक उनकी वाणी स्मृतिरूप से हमारे मुनिराजों के पास सुरक्षित रही। गिरनार पर्वत पर परमोपकारी मुनिराज श्रीधरसेनाचार्य के ज्ञान में भगवान की वाणी का कुछ अंश ज्यों का त्यों सुरक्षित था। उनके मन में जिनवाणी सुरक्षित करने का भाव आया। इसकी सूचना उन्होंने मुनियों के सम्मेलन में भेजी। कुछ दिन बाद रात्रि में आचार्य ने स्वप्न में दो श्वेत बैल देखे, स्वप्न के फलस्वरूप प्रातःकाल ही उनके पास दो योग्य एवं अतिविनम्र दिगम्बर मुनिराज पुष्पदन्त एवं भूतबली आये। आचार्य ने मन्त्र-साधना द्वारा दोनों की परीक्षाकर उनको अपना शिष्य बनाया और उन्हें ज्ञान प्रदान किया। उन दोनों मुनिराजों ने षट्खण्डागम ग्रन्थ लिपिबद्ध किया। जिस दिन यह ग्रन्थ पूरा हुआ, वह दिन 'श्रुतपञ्चमी महापर्व' के नाम से विख्यात हुआ।

आचार्य श्रीधरसेन जो न ग्रन्थ लिखाते।
हम जैसे बुद्धिहीन तत्त्व कैसे लखाते॥

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

एवं

कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

के संयुक्त तत्त्वावधान में

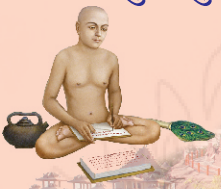

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(गुरुवार, 12 नवम्बर से सोमवार, 16 नवम्बर 2020)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं शिक्षण शिविर अध्यात्म, सिद्धान्त एवं जिनवरों की भक्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।

सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन

अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216 (हाथरस)

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०);

9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com;

website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-9 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) सितम्बर 2020

आतम रूप अनुपम अद्भुत....

आतम रूप अनुपम अद्भुत,
याहि लखैं भव-सिंधु तरो ।टेक ॥

अल्पकाल में भरत चक्रधर,
निज आतम को ध्याय खरो।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे,
तत्छिन पायौ लोकशिरो ॥1 ॥

या बिन समुझे द्रव्यलिंगि मुनि,
उग्र तपन कर भार भरो।
नवग्रीवक पर्यंत जाय चिर,
फेर भवार्णव माहिं परो ॥2 ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप,
ये हि जगत में सार नरो।
पूरव शिव को गये जाहिं अब,
फिर जैहैं यह नियत करो ॥3 ॥

कोटि ग्रंथ को सार यही है,
ये ही जिनवानी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को,
मुक्तिरमा तव वेग वरो ॥4 ॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
स्व. पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
वरजू बहिन
सुपुत्र **श्री जवरचंदजी**
दुलीचंदजी हथाया
(थाणावाले) मुम्बई-7

क्या - कहाँ

धर्मी को एक भी पर्याय में 5
सर्वज्ञ कथित वस्तुस्वरूप 13
सम्यग्दर्शन 16
जीवद्रव्य के नाम 25
आचार्यदेव परिचय शृंखला 29
मैं और मेरा जीवन-धन 30
समाचार-दर्शन 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आत्मा समीप है

धर्मी को एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है

[नियमसार गाथा 127, कलश 212 पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन]

अहा, शुद्ध चैतन्यस्वभावी मेरा आत्मा! उसमें मुझे शुद्ध ज्ञान-आनंद का ही परिचय है, उसमें भव का परिचय नहीं है, भव के कारणरूप किन्हीं विभावों के साथ मेरे चेतनस्वभाव का परिचय नहीं है, संबंध नहीं है। मेरी आत्मानुभूति में मेरी शांति और आनंद के अनंतभाव भरे हुए हैं, परंतु रागादि परभाव तो उसमें किंचित् भी नहीं हैं। अंतर में आत्मा के ऐसे स्वभाव का अभ्यास करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं मोक्षरूप परिणमन होता है; परंतु भवरूप परिणमन नहीं होता। अपने सम्यक्त्वादि स्वभावरूप परिणमित होना, यह तो जीव का स्वभाव ही है; उस शुद्ध परिणाम में आत्मा स्वयं समीप है, उसमें रागादि की निकटता नहीं है, रागादि तो उससे दूर हैं और शुद्धस्वभाव उसमें अत्यंत निकट (तन्मय) है।

अरे जीव! शांत होकर अपने स्वतत्त्व को अंतर में देख तो सही, कैसा है तेरा चैतन्यतत्त्व! अपने चैतन्यतत्त्व के अनुभव में तुझे भवरहित चैतन्यसुख दृष्टिगोचर होगा, भव और भव के कारणरूप समस्त विभाव तो चैतन्य से अत्यंत दूर हो गये हैं—पृथक् हो गये हैं।

अहा, जो पर्याय अंतर में चैतन्यस्वभाव के निकट आयी, वह पर्याय राग के निकट क्यों जायेगी? जिस पर्याय में मोक्षसुख का अनुभव हुआ, उस पर्याय में भवदु:ख का परिचय क्यों रहेगा? धर्मी कहता है कि मेरे आत्मा में भव का परिचय नहीं है; चिदानंदस्वभाव के परिचय में समतारूप सामायिक है अर्थात् मोक्षमार्ग है, शांति का वेदन है।

चैतन्य जिसका चमत्कार है, अनंत चैतन्यभावों से जो गंभीर है, ऐसा मेरा परमतत्त्व स्वानुभूति में प्रकाशित हुआ है, वह जयवंत है; रागादि भावों का परिचय उसमें से छूट गया है।

हे जीव! चेतना को जागृत करके ऐसा पुरुषार्थ कर कि एक क्षण में चिदानंदस्वभाव में उतर जाये और समस्त परभावों से पृथक् हो जाये। तेरा स्वभाव शुद्धतारूप परिणमित होने का है और उसका यह अवसर है। शुद्धतत्त्व को जानने से शुद्धपरिणमन होता है, वह सामायिक है, उसमें आत्मा की प्राप्ति है। अपनी टंकोत्कीर्ण निज महिमा में लीन ऐसे शुद्धतत्त्व को सम्यग्दृष्टि साक्षात् जानता है। तीर्थंकर-गणधर-मुनिवर-संतों के हृदय में जो सदा स्थित है, ऐसा परम महिमावंत चैतन्यतत्त्व मुझे भी अपनी अनुभूति में गोचर होता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि अनुभव करता है। स्वयं अपने को प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही मेरा स्वभाव है। ऐसे अपने आत्मा को एक ओर रख देने से कभी कल्याण नहीं हो सकता। अपना महान तत्त्व कैसा है, उसे ज्ञान में अत्यंत समीप लाकर, स्वानुभवगोचर करके अपूर्व कल्याण होता है। आत्मा कोई अगोचर वस्तु नहीं है, सम्यग्दृष्टि के स्वानुभव में वह आनंदसहित गोचर होता है।

धर्मात्मा के सर्व निर्मलभावों में अपना शुद्ध आत्मा ही संनिष्ठ है; स्वपर्याय में आत्मा ही सम्यक्रूप से स्थित है; पर्याय-पर्याय में आत्मा ही उसे समीप वर्तता है। उसकी एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है परंतु सर्व पर्यायों में आत्मा समीप ही है। रागादिभाव उससे दूर हैं-भिन्न हैं। अरे जीव! तेरा आत्मा तुझमें ही अत्यंत निकट है, तथापि उसे दूर समझकर तूने राग से मित्रता की है; परंतु राग तो तेरे स्वभाव से दूर है। चेतन में आत्मा की ही समीपता है और रागादिकभाव दूर हैं; इसलिये अंतरंगदृष्टि द्वारा आत्मा को ही समीप कर। परिणाम को आत्मा में तन्मय करके आनंद का अनुभव कर। ऐसा अनुभव करने पर सर्व परभाव लोप हो जायेंगे और भगवान आत्मा परम आनंदसहित प्रगट होगा।

* 'चेतनावंत' ज्ञानी.... उसकी सच्ची भक्ति *

धर्मात्मा को एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है; उसने आत्मा के साथ परिणति की डोरी बाँधी है और राग के साथ संबंध तोड़ दिया है। उसकी

चेतना की एक भी पर्याय ऐसी नहीं है कि राग में तन्मय हो, उसकी चेतना राग से सर्वथा भिन्न चैतन्यभावरूप ही वर्तती है।—ऐसी चेतना को पहिचाने—जाने, तब धर्मी को पहिचाना कहा जाता है। जिसप्रकार केवलज्ञानी भगवान की ज्ञानचेतना राग से सर्वथा भिन्न है, उसीप्रकार साधक धर्मात्मा की जो ज्ञानचेतना है, वह भी राग से सर्वथा भिन्न है, परभाव के किसी भी कण को वह अपने में नहीं मिलाती; ऐसी चेतनास्वरूप से अपना स्पष्ट वेदन हो, तब भेदज्ञान हुआ कहा जाता है तथा वह आत्मा ज्ञानचेतनास्वरूप होकर मोक्षमार्गी हुआ कहा जाता है। ज्ञानी की पहिचान राग द्वारा नहीं, परंतु ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी की पहिचान होती है। ऐसी पहिचान करे, तब ज्ञानी को सच्ची पहिचान और सम्यग्दर्शनादि होते हैं।

*** शांतरस के कुण्ड में स्नान करने से भवरोग का नाश होता है ***

आत्मा अपने परमानंदरूपी अद्वितीय अमृत से भरपूर है। ऐसे आत्मा को आनंदभक्ति से परिपूर्ण परम शांतरसरूपी जल द्वारा स्नान कराओ! अन्य कल्पना-जाल का क्या काम है ?

अहा, मेरे भगवान ने जैसे आत्मा का अनुभव करके प्रगट किया, वैसा ही आत्मा मैं हूँ—इसप्रकार अंतर में स्वसन्मुख अनुभूति के आनंदमय फव्वारे से आत्मा को स्नान कराओ, आत्मा को प्रशमरस में डुबाओ। आत्मा चैतन्यसमुद्र है, वह स्वयं अपने में ही मग्न होकर अपने शांत चैतन्यरस का पान करता है; जिसप्रकार शारीरिक रोग को दूर करने के लिये लोग राजगृही आदि के गरम पानी के कुण्डों में स्नान करते हैं, उसीप्रकार हे जीव! आत्मा के कषायादि भवरोग को मिटाने के लिये तू अपने अंतर में भरे हुए परम शांत चैतन्यकुण्ड में स्नान कर... तेरे सब रोग दूर हो जायेंगे।

धर्मात्मा जानता है कि मैं अपनी निर्मल पर्याय के समीप जा रहा हूँ... राग से दूर होता हुआ अपनी चेतना परिणति में एकाग्र होता हूँ।

श्रीगुरु का उपदेश भी यही है कि—अपने परिणाम में तू अपने चैतन्यस्वभावी आत्मा को ही मुख्य रख; उसी को समीप रख और उसके

अतिरिक्त अन्य सबको दूर कर दे। अपने में शुद्ध आत्मतत्त्व की आनंदमय अनुभूति हुई, वही परम गुरुओं का प्रसाद है। अहो, परम गुरुओं ने प्रसन्न होकर हमें ऐसे शुद्धात्मा का प्रसाद दिया... उसके अनुग्रह द्वारा हमें जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश मिला, उससे हमें स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव प्रगट हुआ।

* भावी तीर्थाधिनाथ का उदाहरण देकर समझाते हैं *

अहा, जो भावी तीर्थाधिनाथ हैं, भवभय को हरनेवाले हैं और रागरहित होने से अभिराम हैं—सुंदर हैं, ऐसे शुद्धदृष्टिवंत भावी तीर्थाधिनाथ को अपने समस्त स्वसन्मुख परिणाम में अपना शुद्ध आत्मा ही ऊर्ध्व है, वही मुख्य है, वही समीप है, इसलिये उन्हें सहज समता साक्षात् वर्तती है। भावी तीर्थनायक के उत्कृष्ट उदाहरण द्वारा सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों की शुद्धदृष्टि में कैसा शुद्धात्मा वर्तता है, वह समझाया है। धर्मात्मा को समस्त परिणमन से अपना निरंजन कारणपरमात्मा ही सदा निकट है। परमगुरु के प्रसाद से ऐसे कारणपरमात्मा को स्वयं प्राप्त किया है—अनुभव में लिया है। श्रीगुरु के उपदेश में जैसा शुद्ध आत्मस्वरूप बतलाया, वैसा समझकर स्वयं प्रगट किया अर्थात् निर्मल पर्याय प्रगट करके उसमें स्वयं स्थित हुआ, रागादि समस्त परभावों से पृथक् हुआ, दूर हुआ। इसप्रकार भावी जिन-भगवंत निजस्वभाव के समीप और परभावों से पराङ्मुख हुए, उन्हें सदा वीतरागी समताभावरूप स्थिर सामायिक है; सामायिकभावरूप अपनी निर्मल दशा में वह आत्मा सदा स्थिर रहता है; इसलिये भगवान के शासन में उस आत्मा की ही सामायिक कही है।

जहाँ अपना शुद्धात्मा समीप नहीं है, शुद्धात्मा जिसकी दृष्टि में नहीं आया है, वह आत्मा को दूर रखकर आत्मा को भूलकर चाहे जो करे, परंतु उसे शुद्धता नहीं होती, सामायिक नहीं होती, चारित्र नहीं होता, श्रद्धा-ज्ञान भी नहीं होते;—एक भी धर्म उसे नहीं होता। आत्मा को अपना स्वज्ञेय बनाये बिना सब व्यर्थ है, उसके बिना बाह्य जानकारी या शुभ आचरण, वे

कोई शांति प्रदान नहीं करेंगे। शांति देनेवाला अपना आत्मा है, उसके निकट तो वह जाता नहीं है तो उसे शांति कहाँ से मिलेगी ?

व्यवहार के परिणाम के समय भी धर्मी को उसमें निकटता-तन्मयता नहीं है, उस समय उसकी चेतना तो उस व्यवहार के राग से दूर ही वर्तती है और अपने शुद्ध परमतत्त्व के समीप ही वर्तती है। धर्मी की चेतना में अपना स्वभाव ही समीप है और राग दूर है—पृथक् है। जिसे चैतन्य की निकटता हुई है—शुद्ध परिणति में भगवान आत्मा अनुभव में आया है—ऐसे शुद्धदृष्टिवंत जीव को ही व्यवहार संयमादि सच्चे होते हैं। शुद्ध आत्मा जिसकी दृष्टि में नहीं वर्तता और मात्र राग ही जिसकी परिणति में तन्मय वर्तता है—ऐसे अज्ञानी को तो व्यवहार भी सच्चा नहीं होता। उसे जो अपना आत्मा दूर है, अर्थात् अनुभूति में नहीं आता।

* मेरा आत्मा मुझे दूर नहीं है *

अरे, मैं स्वयं चैतन्यप्रभु.... मैं अपने से दूर क्यों होऊँगा ? आत्मा स्वयं अपने समीप ही है, स्वयं अपने स्वभाव में ही सत् है।—ऐसे आत्मा में जिसके परिणाम तन्मय हैं, उसी को धर्म है; जिसके परिणाम अपने आत्मा में तन्मय नहीं हैं अर्थात् जो आत्मा राग से भिन्न चेतनारूप परिणमित नहीं हुआ है और रागादि परभाव में तन्मयभाव से वर्तता है, उसे धर्म नहीं है, शांति नहीं है, सामायिक नहीं है। धर्मी तो कहता है कि मेरी पर्याय-पर्याय में मेरे चैतन्यप्रभु का अमृत बरस रहा है, चैतन्यरस के समुद्र में ही मेरी सब पर्यायें मग्न हैं, मेरी कोई पर्याय राग में तन्मय नहीं है। मेरा आत्मा राग से भिन्न चेतनाभावरूप ही परिणमित हो रहा है।—इसप्रकार जिसने चैतन्यप्रभु को समीप रखा और जो स्वयं चैतन्यप्रभु के समीप गई, उस पर्याय में राग रह नहीं सकता, वह पर्याय राग से पृथक् हो गई; इसलिये वीतरागभाव से वह सुंदर सुशोभित हुई। ऐसी शुद्ध आत्मदृष्टिवाले जीव अभिराम हैं—सुंदर हैं—मनोहर हैं। अहा, तीर्थंकर होनेवाले आत्मा ऐसी शुद्धात्मदृष्टि द्वारा मनोहर हैं, भवभय को हरनेवाले हैं।

जहाँ आत्मा की समीपता है, आत्मा में एकाग्रता है, वहीं सच्ची सामायिक है। जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ सामायिक कैसी ? जिस परिणाम में अपने शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं है उसमें सामायिक कैसी ? उसमें वीतरागता कैसी ? उसमें सुख कैसा ? उसमें धर्म कैसा ? धर्मी को अपनी समस्त पर्यायों में, ज्ञान में-श्रद्धा में-चारित्र में-आनंद में सदा अपने शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष वर्तता है, एक समय भी वह वह दूर नहीं है।

*** धन्य! भावी तीर्थाधिनाथ! ***

जिसमें शुद्ध आत्मा समीप है, ऐसी सामायिक के वर्णन में भावी तीर्थाधिनाथ को याद करके मुनिराज कहते हैं कि अहो, तीर्थंकरों को उस भव में दर्शन और चारित्र दोनों अप्रतिहत होते हैं; ऐसे भावी तीर्थंकर को तथा उन जैसे शुद्धदृष्टिवंत सर्व जीवों को ज्ञान में-श्रद्धा में-चारित्र में-आनंद में इसप्रकार सर्व भावों में अपना शुद्ध आत्मा ही समीप है, वही शुद्ध परिणाम में तन्मय वर्तता है। आत्मा स्वयं अपने निर्मल परिणाम में तन्मय-एकाकार वर्तता है, इसलिये वही समीप है, और रागादिभावों में आत्मा तन्मय नहीं वर्तता, इसलिये रागादि से वह दूर है, भिन्न है।

धर्मात्मा को आत्मा की निकटता एक क्षण भी नहीं छूटती... और जहाँ आत्मा समीप है अर्थात् आत्माभिमुखभाव है, वहाँ समता ही है, वीतरागता ही है। ऐसा वीतरागी कार्य, वही नियमसार है, वही मोक्ष का मार्ग है। किसकी समीपता में आनंद होता है ?—तो कहते हैं कि आत्मा स्वयं सहज आनंदस्वरूप है, इसलिये अंतर्मुख होकर आत्मा की समीपता में ही आनंद का वेदन होता है।

हे जीव! सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा; सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा; आनंदपर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा। परम समभावरूप सामायिक करना हो तो आत्मा के समीप जा। भावी तीर्थाधिनाथ एवं सर्व शुद्धदृष्टिवंत जीव इसप्रकार आत्मा के समीप जाकर, आत्मा को मुख्य रखकर, उसमें

एकाग्रता द्वारा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र और सामायिक प्रगट करते हैं।

अहा, ऐसी शुद्धदृष्टिवान यह भावी तीर्थाधिनाथ शुद्धद्रव्य में अभेद पर्याय द्वारा अभिराम हैं, सुशोभित हैं, शुद्धद्रव्य में अभेद परिणति द्वारा राग का अभाव हुआ है, इसलिये वे वीतरागरूप से सुशोभित हैं—सुंदर हैं—मनोहर हैं—अभिराम हैं और भव के भय को हरनेवाले हैं। अरे, भगवान आत्मा जहाँ अनुभूति में निकट विराजमान हो, वहाँ भवदुःख कैसे ? और भय कैसा ? भगवान आत्मा तो भव के भय को हरनेवाला है।

मैं तो चेतनामय आत्मा हूँ—ऐसी शुद्धदृष्टि धर्मी को कभी छूटती नहीं है। प्रत्येक कार्य के समय, प्रत्येक परिणाम के समय आत्मा की ही ऊर्ध्वता रहती है, आत्मा ही मुख्य रहता है; रागादि से आत्मा ऊर्ध्व रहता है, भिन्न रहता है। ऐसी दृष्टि से शुद्धदृष्टिवंत जीव शोभायमान है। अहा! ऐसी शुद्धदृष्टिवंत जीव, वह तो भविष्य का भगवान है; भावी तीर्थाधिनाथ अप्रतिहतभाव से आत्मा को समीप ही रखकर सामायिक द्वारा मोक्ष को साधता है। प्राकृतिक आत्मा आनंदमय है, उसकी समीपता होने से आनंद का वेदन करता-करता वह आत्मा मोक्ष में जाता है। किसी धर्मात्मा को अपने धर्मपरिणाम में आत्मा दूर नहीं होता। जितने धर्मपरिणाम हैं, उन सब परिणामों में आत्मा स्वयं तन्मय वर्तता है, आत्मा स्वयं उस स्वरूप है। सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में, आनंद में सर्व परिणाम में संपूर्ण आत्मा वर्तता है, दूर नहीं रहता, पृथक् नहीं रहता। प्रत्येक पर्याय में धर्मी को समतारस का संपूर्ण चैतन्यपिण्ड प्रत्यक्ष वर्तता है।—ऐसे धर्मात्मा के भाव में सदा सामायिक है।

धर्मात्मा की ज्ञानदशा में सहज परमानंदरूपी अमृत की बाढ़ आयी है... संपूर्ण ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा स्वयं परम आनंदरूप से उल्लसित हुआ है; उसमें अब राग-द्वेष कैसे ? अशांति कैसी ? ...आत्मा के निकट जाकर महा आनंद के वेदन में जो पर्याय निमग्न हुई, उसमें अब राग-द्वेषादि विकृति नहीं होती, वह तो परम शांत है; ऐसे भाव का नाम

सामायिक है और वही परमानंद का पंथ है, वह स्वयं आनंदरूप है, मोक्ष के परम आनंद को साधता है।

विकल्प ज्ञान के स्वभाव में हैं ही नहीं, ज्ञान के स्वभाव में आनंद का पूर है, समभाव है, परंतु उसमें राग-द्वेषादि विकृति नहीं है। आत्मस्वभाव के अनंत भावों का समरस ज्ञान में समा जाता है; ऐसा समरसी आत्मा है, उसके अनुभव द्वारा सामायिक प्रगट होती है। पर्याय अंतर्मुख होकर आत्मा के शुद्धचैतन्यरस के पान में तत्पर है, निर्विकल्पता से चैतन्य का आनंदरस पीने में ही वह तल्लीन है; अन्य किसी परभाव में वह पर्याय अब नहीं लगती। परम वीतरागी सुख के अमृत का स्वाद जिसने चखा, वह विकार का विषैला स्वाद लेने क्यों जायेगा? अंतर्मुख ज्ञान का स्वाद और विकल्प का स्वाद—इन दोनों के बीच अमृत और विष जितना अंतर है। ज्ञान का स्वाद तो परम शांतरसमय है और विकल्प का स्वाद आकुल-अशांत है। धर्मी जीव ज्ञान द्वारा आत्मा के आनंद का रसपान करता है, वह तीर्थंकरों का अनुयायी है। तीर्थाधिनाथ का जो सुंदर मार्ग-उसमें वह चल रहा है, सुशोभित हो रहा है।

धन्य हैं तीर्थाधिनाथ और उनका सुंदर मार्ग!

— आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 7

मङ्गल समाचार

श्री गजपंथ सिद्धक्षेत्र ट्रस्ट एवं श्री गजपंथ फाउण्डेशन ट्रस्ट के सभी ट्रस्टियों की मीटिंग सम्पन्न हुई।

इस मीटिंग में श्री गजपंथ सिद्धक्षेत्र ट्रस्ट के अध्यक्ष के रूप में श्री हेमन्तजी बेलोकर तथा श्री गजपंथ फाउण्डेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष के रूप में श्री अनन्तभाई सेठ, मुम्बई को सर्वसम्मति से चुना गया।

दोनों नवनिर्वाचित अध्यक्षों का तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार अभिनन्दन एवं शुभकामनाएँ प्रेषित करता है।

सर्वज्ञ कथित वस्तुस्वरूप

नित्य-अनित्यस्वरूप जो सत् वस्तु; उसका अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं है, फिर भी सब द्रव्यों में अस्तित्व-सत्तागुण की अपेक्षा संग्रहनय से देखने पर महासत्ता एक है, उसमें सबका स्वरूप-अस्तित्व सदा पृथक्-पृथक् ही है। महासत्ता एक का प्रतिपक्ष-अवांतरसत्ता अनेक है। प्रत्येक वस्तु में स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव से स्वरूप-अस्तित्व है। जो वस्तु द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य है, वही वस्तु उसी समय पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्ययरूप पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

पर्याय के कारण से पर्याय है, ध्रुव के कारण ध्रुव है। यह है तो दूसरे का अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। प्रत्येक चेतन द्रव्य के चतुष्टय अरूपी ज्ञानमय होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (गुण की क्रिया) सदा अरूपी ही हैं, अतीन्द्रिय-ग्राह्य हैं, उसके प्रतिपक्ष में पुद्गलद्रव्यों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टय सदा रूपी ही होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (स्पर्श-रस-गंध-वर्णादि गुणों की क्रिया) सदा रूपी ही हैं; सूक्ष्म पुद्गलपरमाणु और सूक्ष्म स्कंध रूपी होने पर भी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य नहीं है। परमाणु अपनी स्व-शक्ति से रंग या स्पर्शादि की नयी-नयी पर्याय की उत्पत्तिपूर्वक पूर्वपर्याय का व्ययरूपी निजकार्य निरंतर अपने से करता है; स्वरूप-अस्तित्व तीनों काल प्रत्येक जीव-अजीव को स्वतंत्र सत्तारूप बतलाता है।

प्रत्येक जीव-अजीव अपने से ही अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में एक-अनेक, नित्य-अनित्यात्मक है। ऐसा होना पर के कारण से नहीं, पूर्व पर्याय के कारण नहीं, कोई संयोगरूप निमित्त के कारण से नहीं, अपने उपादान (निजशक्ति) का कार्य ऐसा है। आत्मा का ज्ञानगुण भी नित्य और परिणामी है; इसलिये निरंतर ज्ञान की पर्याय ज्ञान से है, श्रद्धा की पर्याय श्रद्धा से है, सुख की पर्याय अपनी ही योग्यता के अनुरूप सुख द्वारा है; पर के अस्तित्व द्वारा है, ऐसा नहीं है।

सब कथनों में सार प्रयोजनभूत तो पर से भिन्न और अपने ज्ञानानंदमय चैतन्यस्वरूप से अभिन्न आत्मा है, उसे पहचानकर पर में कर्तृत्व-ममत्व माननेरूप मिथ्याश्रद्धा छोड़ना चाहिये। प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र सत् स्व से है, पर से नहीं है—ऐसा स्पष्ट भावभासनरूप अनुभव करे तो अपूर्वदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन होता ही है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु अपनी प्रभुता से पूर्ण है; इसप्रकार अंतर्दृष्टि होने पर ज्ञानपर्याय सम्यक् हुई, यह नियम है; किंतु सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, इसलिये सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट हुई, ऐसा नहीं है। एकसाथ आत्मा में अनंत गुणों की अनंत पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप से परिवर्तन क्रिया करती हैं।

सब अपनी भूमिका के अनुसार अपनी-अपनी योग्यता से है, पर के कारण से नहीं—ऐसा प्रथम स्वीकार करे तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये निमित्त की मुख्यता से कथन उचित है। कभी भी निमित्त की मुख्यता से कार्य नहीं होता, ऐसा नियम है। पर द्वारा यह कार्य हुआ, ऐसा कथन उपचार-व्यवहारनय का है, परमार्थ नहीं है; और जो जीव व्यवहारकथन को निश्चयकथन मान ले तो वह स्वतंत्र सत् का नाश करनेवाला मिथ्यादृष्टि है।

यह तो तत्त्व की बात है। सत् स्वतंत्र है; किसी के कार्य में किसी अन्य की सहायता नहीं है। अनंत आत्माओं की जो पर्यायें हैं, उन्हें संग्रहनय द्वारा महासत्ता कहा, उनके प्रतिपक्ष में उसी समय एक आत्मा का स्वरूप-अस्तित्व है, यह अवान्तरसत्ता है, जो अपने रूप से है, किंतु पर से है, ऐसा नहीं है।

भगवान ने अपने रागरहित ज्ञान में शब्द-अर्थ और ज्ञानरूप सत्ता को स्पष्ट जाना है। प्रत्येक सत् का अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं है। केवलज्ञान के कारण दिव्यवाणी है, ऐसा नहीं, प्रत्येक वस्तु के कार्यकाल में

अपनी शक्ति से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व है, अन्य तो निमित्तमात्र हैं, ऐसा समझे बिना और स्वसन्मुख दृष्टि किये बिना उनके माने हुए व्रत-तप-जप, दया, दान के भाव व्यवहार साधन भी कहलाने योग्य नहीं हैं। ज्ञान का विकास हो, उतना क्षयोपशम होता है, किंतु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो, तब ज्ञान की पर्याय होती है—ऐसी पराधीनता नहीं है। जड़कर्म में कुछ हुआ, इसलिये ज्ञान में हीनाधिकता है—ऐसा अर्थ नहीं है। जहाँ निमित्त से कथन किया हो, वहाँ उपादान वस्तु की योग्यता कैसी है, वह बतलाना है।

काशी में जाकर यह बड़ा पंडित हुआ, इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि काशीक्षेत्र से ज्ञान हुआ। ज्ञान, ज्ञान से हुआ है। पूर्व पर्याय से, जड़कर्म से, राग से, वाणी से या गुरु से ज्ञान नहीं होता। निमित्त तो निमित्तमात्र है, दूर ही है। एक द्रव्य में दूसरे का प्रवेश नहीं है। प्रथम ही स्व-आश्रय से निर्णय करना चाहिये, अपने को देखना चाहिये, अन्यथा सुख-संतोष नहीं होगा।

ऐसा नहीं है कि शिक्षक बड़ा विद्वान था, इसलिये शिष्य को ज्ञान हुआ। पर से कुछ नहीं आया; वाणी की दशा पुद्गलपरमाणु से हुई; ज्ञान की अवस्था अपनी योग्यता से ज्ञान के कारण हुई है। अपना आत्मा नित्य चिदानंद भगवान है, अंदर उत्पाद-व्यय उत्पाद-व्यय से है; ध्रुवसत्ता ध्रुवत्व से है; ऐसा नहीं है कि उसके स्वरूपअस्तित्व से दूसरी पर्याय है। यहाँ लक्षणदृष्टि से सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का कथन है। सूक्ष्मता से वस्तुतत्त्व समझने से भावभासनरूप स्पष्ट ज्ञान (पक्का ज्ञान) होता है।

प्रश्नः—यदि ऐसा माना जाये कि-विकार जीव ने किया, तो स्व से सत् मानने के कारण विकार जीव का स्वभाव हो जाता है। इसलिए इस दोष के भय से रागादि विकार जड़कर्म आदि पर के कारण माना जाये तो ?

उत्तरः—नहीं, विकारी अशुद्धदशा भी अनित्य पर्यायस्वभाव है, जीव

.....शेष पृष्ठ 24 पर

मोक्षमहल की पहली सीढ़ी

सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शन की अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढाल के अंतिम छंद में उसकी अत्यंत प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव! तू काल गँवाये बिना इस पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण कर!

अहा, सम्यग्दर्शन का स्वरूप अचिंत्य है! हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शन को पहिचानकर अत्यंत महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर... जरा भी काल गँवाये बिना तू सावधान हो और उसे प्राप्त कर; क्योंकि वह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष की पहली सीढ़ी है; ज्ञान या चारित्र कोई सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे नहीं होते। सम्यग्दर्शन से रहित सर्व ज्ञातृत्व और सर्व आचरण, वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है; इसलिये हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन का सच्चा उद्यम कर। यदि इस भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्य भव और जिनधर्म का ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

मोक्षरूपी महल में पहुँचने के लिये रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है, उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; उसके बिना ऊपर की सीढ़ियाँ (श्रावकपना, मुनिपना आदि) नहीं होती। नसैनी की पहली सीढ़ी जिससे नहीं चढ़ी जाती, वह बाकी सीढ़ियाँ चढ़कर मोक्ष में कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शन के बिना सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव, वे कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं हैं, वह तो संसार में उतरने का मार्ग है। राग को जिसने मार्ग माना, वह तो संसार के मार्ग में है; राग के मार्ग पर चलकर कहीं मोक्ष में नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्ष का मार्ग तो स्वानुभवयुक्त-सम्यग्दर्शन है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा, वह मोक्षरूपी आनंदमहल है और अंशतः शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। अंशतः शुद्धता के बिना

सम्यग्दर्शन की अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढाल के अंतिम छंद में उसकी अत्यंत प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव! तू काल गँवाये बिना इस पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण कर!

अहा, सम्यग्दर्शन का स्वरूप अचिंत्य है! हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शन को पहिचानकर अत्यंत महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर... जरा भी काल गँवाये बिना तू सावधान हो और उसे प्राप्त कर; क्योंकि वह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष की पहली सीढ़ी है; ज्ञान या चारित्र कोई सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे नहीं होते। सम्यग्दर्शन से रहित सर्व ज्ञातृत्व और सर्व आचरण, वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है; इसलिये हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन का सच्चा उद्यम कर। यदि इस भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्य भव और जिनधर्म का ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

मोक्षरूपी महल में पहुँचने के लिये रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है, उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; उसके बिना ऊपर की सीढ़ियाँ (श्रावकपना, मुनिपना आदि) नहीं होती। नसैनी की पहली सीढ़ी जिससे नहीं चढ़ी जाती, वह बाकी सीढ़ियाँ चढ़कर मोक्ष में कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शन के बिना सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव, वे कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं हैं, वह तो संसार में उतरने का मार्ग है। राग को जिसने मार्ग माना, वह तो संसार के मार्ग में है; राग के मार्ग पर चलकर कहीं मोक्ष में नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्ष का मार्ग तो स्वानुभवयुक्त-सम्यग्दर्शन है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा, वह मोक्षरूपी आनंदमहल है और अंशतः शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। अंशतः शुद्धता के बिना पूर्ण शुद्धता के मार्ग पर कहाँ से पहुँचा जायेगा? अशुद्धता के मार्ग पर चलने से कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है?—मोक्ष कोई त्रैकालिक द्रव्य या गुण नहीं है, परंतु वह

तो जीव के ज्ञानादि गुणों की पूर्ण शुद्धदशारूप कार्य है; उसका पहला कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का लक्ष्य पूर्ण शुद्ध आत्मा है; उस पूर्णता के ध्येय से पूर्ण के ओर की धारा उल्लसित होती है; बीच में रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों, परंतु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है, वह कहीं मोक्ष की सीढ़ी नहीं है। सम्यक्ता कहो या शुद्धता कहो; ज्ञान-चारित्रादि की शुद्धि का मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग, वह कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है; राग का फल सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शन का फल शुभराग नहीं है, दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं।

आत्मा शांत वीतरागस्वभाव है; वह पुण्य द्वारा, राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनुभव में नहीं आता; परंतु सीधा स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव हो, तब सम्यग्दर्शन होता है और तभी मोक्षमार्ग खुलता है। अनंत जन्म-मरण के नाश के उपाय में तथा मोक्ष के परमानंद की प्राप्ति में सम्यग्दर्शन ही पहली सीढ़ी है, उसके बिना ज्ञान का ज्ञातृत्व या शुभराग की क्रियाएँ, वह सब निरर्थक हैं। उससे धर्म का फल जरा भी नहीं आता; इसलिये वह सब निरर्थक है। नवतत्त्वों की मात्र व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञातृत्व या पंचमहाव्रतादि शुभ आचार, वह कोई राग आत्मा के सम्यग्दर्शन के लिये किंचित् कारणरूप नहीं है; विकल्प की सहायता द्वारा कभी निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती। सम्यक्त्वादि की भूमिका में उसके योग्य व्यवहार होता है, इतनी उसकी मर्यादा है, परंतु वह व्यवहार है, इसलिये उसके कारण निश्चय है-ऐसा नहीं है। व्यवहार के जितने विकल्प हैं, वे सब आकुलता और दुःख हैं, आत्मा के निश्चयरत्नत्रय ही सुखरूप और अनाकुल हैं। ज्ञानी को भी विकल्प, वह दुःख है; विकल्प द्वारा कहीं आत्मा का कार्य ज्ञानी को नहीं होता; उसी समय उससे भिन्न ऐसे निश्चयश्रद्धा-ज्ञानादि अपने आत्मा के अवलंबन से उसको वर्तते हैं और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे निरपेक्ष निश्चयसहित जो व्यवहार हो] वह व्यवहाररूप से सच्चा है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान या चारित्र में यथार्थता नहीं आती अर्थात् मिथ्यापना रहता है। सम्यग्दर्शन के बिना सब झूठा ?—हाँ, मोक्ष के लिये वह सब निरर्थक है; धर्म के लिये वह सब बेकार है। शास्त्रज्ञान की बातें करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण द्वारा न्याय समझाये, अथवा व्रतादि आचरणरूप क्रियाओं द्वारा लोक में वाहवाह हो, परंतु सम्यग्दर्शन के बिना उसका ज्ञान और आचरण सब मिथ्या है, उसमें आत्मा का किंचित् हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं, आत्मा का सुख नहीं है।

व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वे सम्यग्दर्शन के बिना कैसे हैं ?—तो कहते हैं कि वे सम्यक्ता को प्राप्त नहीं होते अर्थात् सच्चे नहीं किंतु मिथ्या है, उनके द्वारा मोक्षमार्ग नहीं सधता। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही सच्चे ज्ञान-चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है, इसलिये वह धर्म का मूल है।

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीवो! तुम धारण करो, बहुमानसहित उसकी आराधना करो! हे सयाने आत्मा! तू चेत, समझ और काल गँवाये बिना शीघ्र ही उस सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर। यह उत्तम अवसर है, फिर यह मनुष्य भव प्राप्त होना दुर्लभ है। हे भव्य! हे सुखाभिलाषी! सुख के लिये तू इस उत्तमकार्य को शीघ्र कर!—शीघ्र अपने आत्मा को पहिचान।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने भी कहा है कि—('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्मा के सर्व गुणों की पूर्णशुद्धता, सो मोक्ष है।

('सर्वगुणांश सो सम्यक्त') आत्मा के सर्व गुणों की अंशतः शुद्धता, सो मोक्षमार्ग है।

आत्मा में जैसा ज्ञानानंदस्वभाव त्रिकाल है, वैसा पर्याय में प्रगट हो, उसका नाम मोक्ष; और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका कारण, वह मोक्षमार्ग है; उसमें भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है ? कि—

'परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि, सम्यक्त्व भला है।'

परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की रुचि, सो सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थी को ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिये। मैं ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा हूँ; शरीरादि अजीव मैं नहीं हूँ, रागादि आस्रव भी मैं नहीं हूँ, रागादि से भिन्न अपने आत्मा की अनुभूति करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हुआ, उस काल शास्त्राभ्यास या संयम न हो, तथापि मोक्षमार्ग प्रारंभ हो जाता है। श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—'अनंतकाल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को क्षणमात्र में जात्यंतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।'

ऐसे सम्यग्दर्शन का सच्चा स्वरूप इस जीव ने अनंतकाल में नहीं समझा और विकार को ही आत्मा मानकर उसी के अनुभव में रुक गया है। अधिक किया तो पाप छोड़कर शुभराग में आया परंतु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है और उसके अनुभव से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी**'—भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि होता है। सर्व तत्त्वों के सच्चे निर्णय का समावेश सम्यग्दर्शन में होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणों में रागादि का अंधकार नहीं है; शुभाशुभराग, वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभाव को जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना, सो अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

'परमात्मप्रकाश' में कहते हैं कि—अनंतकाल संसार में भटकता हुआ जीव दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं कर सका—एक तो जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्य में तो जिनवरस्वामी मिले परंतु स्वयं उनके सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना, इसलिये उसे जिनवरस्वामी नहीं मिले—ऐसा कहा है। जिनवर का स्वरूप पहिचानने से सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्र को भगवान के मार्ग की अर्थात् सच्चाई की छाप नहीं मिलती।

सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्मा को श्रद्धा में लिया, तब ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभव में लिये हुए अपने शुद्धात्मा में लीन होने से चारित्र भी सच्चा हुआ; इसलिये कहा कि—

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा,
सम्यक्ता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥

धर्म की पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किंतु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा देते हैं। इसलिये हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्व को अर्थात् निश्चय सम्यक्त्व को तू शीघ्र धारण कर; काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट कर। आत्मबोध बिना शुभराग से तो मात्र पुण्यबंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है; और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी कहीं राग, वह मोक्षमार्ग नहीं है; रागरहित जो रत्नत्रय, वही मोक्षमार्ग है; जितना राग है, उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है; निश्चय सम्यग्दर्शन, वह पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्प से भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति करना, वह सच्चा सम्यक्त्व है, वह मोक्ष का सोपान है; इसलिये शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर ऐसे सम्यक्त्व को धारण करने का उपदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्व की ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसर में सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। पुनः-पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घ संसार में परिभ्रमण का कहीं अंत नहीं आयेगा... इसलिये हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्याय को संभालो! उसे अंतर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। अपनी पर्याय के कर्ता तुम हो;

भगवान तो तुम्हारी पर्याय के दृष्टा हैं परंतु कर्ता नहीं हैं, कर्ता तो तुम्हीं हो। इसलिये तुम स्वयं आत्मा के उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन-पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है, उसे जाने बिना अनंत बार यह जीव स्वर्ग में गया, परंतु वहाँ किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, संसार में ही भटका। सुख का कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानी को करोड़ों जन्म तक तप करने से जो कर्म खिरते हैं, वे ज्ञानी को आत्मज्ञान द्वारा एक क्षण में टल जाते हैं, इसलिये कहा है कि—'ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन...'

तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीव को सुख का अंशमात्र भी अनुभव नहीं होता, अर्थात् धर्म नहीं होता।

जो समझदार है, जो आत्मा को भवदु:ख से छुड़ाने तथा मोक्षसुख के अनुभव के लिये सम्यक्त्व का पिपासु है, ऐसे भव्य जीव को संबोधन करके सम्यग्दर्शन की प्रेरणा देते हैं कि—अरे प्रभु! यह तेरे हित का अवसर आया है, तू कोई मूढ़ नहीं किंतु समझदार है, सयाना है, हित-अहित का विवेक करनेवाला है, जड़-चेतन का विवेक करनेवाला है; इसलिये तू श्रीगुरु का यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरंत सम्यग्दर्शन धारण कर। यहाँ तक आकर अब विलंब न कर। शरीरादि से भिन्न आत्मा का अनुभव कर, उसका तीव्र उद्यम कर।

'समझ, सुन, चेत, सयाने!' हे सयाने जीव! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर अविलंब सम्यक्त्व को धारण कर। मोह का अभाव करके सावधान हो, और अपनी ज्ञानचेतना द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को चेत... उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ परमात्मा में जो है, वह सब तेरे आत्मा में भी है—ऐसा जानकर प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृग की भाँति बाह्य में मत ढूँढ़, अंदर है, उसे अनुभव में ले।

संसार में भटकते-भटकते अनंतकाल में बड़ी कठिनाई से यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ; उसमें ऐसा जैनधर्म और सत्समागम मिला, सम्यक्त्व का ऐसा उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस अवसर को व्यर्थ गँवा दे? भाई, काल गँवाये बिना अंतरंग उद्यमपूर्वक तू निर्मल सम्यग्दर्शन धारण कर। चार गतियों में तूने बहुत दु:ख सहे, अब उन दु:खों से छूटने के लिये आत्मा की यह बात सुन। यह तेरा समझने का काल है, सम्यग्दर्शन का अवसर है, इसलिये इसी समय सम्यग्दर्शन प्रगट कर। देखो, कैसा संबोधन किया है! [भोगभूमि में भी भगवान ऋषभदेव के जीव को सम्यग्दर्शन का उपदेश देकर मुनिराज ने ऐसा कहा था कि—हे आर्य! तू इसी समय इस सम्यक्त्व को ग्रहण कर... तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह काल है। 'तत् गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एषते'... और सचमुच उस जीव ने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया।] उसीप्रकार यहाँ भी कहते हैं कि—हे भव्य! तू अविलंब—इसी समय सम्यक्त्व को धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है, उतना ही तू है; अजीव से तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममत्व से भी आत्मा का स्वभाव भिन्न है; ऐसे आत्मा की प्रतीति बिना अनंतकाल व्यर्थ गँवा दिया, परंतु अब यह उपदेश सुनने के बाद तू एक क्षण भी मत गँवाना; एक-एक क्षण अति मूल्यवान है, बहुमूल्य मणिरत्नों की अपेक्षा मनुष्यभव महँगा है और उसी में इस सम्यग्दर्शन-रत्न की प्राप्ति महादुर्लभ है। अनंतबार मनुष्य हुआ और स्वर्ग में भी गया परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सका—ऐसा जानकर अब तू व्यर्थ काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन प्रगट कर। उद्यम करे तो तेरी काललब्धि पक ही गई है... पुरुषार्थ से काललब्धि भिन्न नहीं है; इसलिये हे भाई! इस अवसर में आत्मा को समझकर उसकी श्रद्धा कर!

पर के कार्य तेरे नहीं हैं और परवस्तु तेरे काम की नहीं है;

आनंदकंद आत्मा ही तेरा है, उसी को काम में ले, श्रद्धा-ज्ञान में ले। परवस्तु या पुण्य-पाप तेरे हित के काम नहीं आयेंगे, अपने ज्ञानानंदस्वभाव को श्रद्धा में ले, वही तुझे मोक्ष के लिये कार्यकारी हैं। समयसार में आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। जिसप्रकार माता बच्चे का पालना झुलाते हुए गीत गाती है कि 'मेरा मुन्ना बड़ा सयाना...' उसीप्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू भगवान है... तू सयाना-समझदार है, इसलिये मोह छोड़कर जाग और अपने आत्मस्वभाव को देख... आत्मस्वभाव का सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का दाता है। सम्यग्दर्शन हुआ कि मोक्ष अवश्य होगा। तेरे गुणगान करके संत तुझे जगाते हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त कराते हैं।

आत्मा अखंड ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, वह पवित्र है; पुण्य-पाप तो मलिन हैं, उनमें स्व-पर की जानने की शक्ति नहीं है, और भगवान आत्मा तो स्वयं अपने को तथा पर को भी जाने, ऐसा चेतकस्वभावी है।—ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शन से रहित सब एकरहित शून्य के

.....पृष्ठ 15 का शेष

का स्वतत्त्व है, अशुद्ध निश्चयनय से जीव उसका कर्ता है। पंचास्तिकाय गाथा 62 में कहा है कि अशुद्धत्व में भी कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान-अपादान-अधिकरण, यह छहों कारक स्वतंत्र हैं। अपनी पर्याय में चारित्रगुण की अशुद्ध उपादानरूप रागपर्याय स्वतंत्र है; उसे ही निश्चय से स्व से सापेक्ष और व्यवहार से परसापेक्ष कही है। अशुद्ध उपादानरूप पर्याय आस्रवतत्त्व में आ जाती है, अत: वह जीवतत्त्व का लक्षण नहीं होने से (स्व-पर को जाने वह चेतन, स्व-पर को न जाने वह अचेतन; इस लक्षण द्वारा) वह अजीवतत्त्व है, ऐसा स्वाश्रय ज्ञान द्वारा जानकर नित्य एकरूप त्रैकालिक निजपरमात्मतत्त्व को उपादेय मानना, वह परमार्थ श्रद्धा है। इस अपेक्षा सामान्य जीवतत्त्व रागादि परभावों का अकारक कहा है, और रागादि को कर्मकृत भी कहा है।● *— आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 7*

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

जीवद्रव्य के नाम

अब नाटक समयसार की उत्थानिका का 37वाँ श्लोक प्रारम्भ करते हैं, जिसमें पण्डित बनारसीदासजी ने सामान्यरूप से जीवद्रव्य के नाम कहे हैं।

सामान्यत: जीवद्रव्य के नाम

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार,
बुद्धरूप अबुद्ध असुद्ध उपजोगी है।
चिद्रूप स्वयंभू चिनमूरति धरमवंत,
प्रानवंत प्रानी जंतु भुत भवभोगी है।।
गुनधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी,
अंगधारी संगधारी जोगधारी जोगी है।
चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम,
करमकौ करतार परम विजोगी है॥37॥

अर्थ:- चिदानन्द, चेतन, अलक्ष, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्ध, उपयोगी, चिद्रूप, स्वयंभू, चिन्मूर्ति, धर्मवन्त, प्राणवन्त, प्राणी, जन्तु, भूत, भवभोगी, गुणधारी, कलाधारी, भेषधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय, अखण्ड, हंस, अक्षर, आत्माराम, कर्म-कर्त्ता, परमवियोगी- ये सब जीवद्रव्य के नाम हैं॥37॥

काव्य - 37 पर प्रवचन

पहला नाम है 'चिदानन्द', चिद् अर्थात् ज्ञान+आनन्द जिसमें है, वह चिदानन्द है, वह सहजानन्द है, अत: सहजानन्द भी आत्मा का नाम है।

चेतन- आत्मा चेतनेवाला है, जाननेवाला है, इसलिए उसे चेतन कहा है। 'अलख' अर्थात् आत्मा इन्द्रियों से जानने में नहीं आता, इसलिए उसे अलख कहा है। इन्द्रियों से और विकल्प से भी जो जानने में न आवे, वैसा अलख है।

जीव- यह तो उसका नाम है। स्वरूप से जीवे, वह जीव है।

समयसार– शास्त्र का नाम समयसार है और आत्मा का नाम भी समयसार है। सम+अय्+सार=समयसार। अर्थात् सम्यक् प्रकार से ज्ञान और आनन्दरूप से परिणमन करके जो द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित होता है– ऐसे आत्मा को समयसार कहते हैं। शास्त्र को समय–सार नाम दिया; परन्तु वे तो शब्द हैं। वस्तुतः तो आत्मा ही समयसार है।

'बुद्धरूप' आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूपी है, ज्ञान का पिण्ड है। 'शुद्ध–बुद्ध चैतन्यघन'। **'अबुद्ध'** अपने स्वरूप को नहीं जानता– ऐसा आत्मा अबुद्ध भी है। जहाँ तक पर्याय में अपने आत्मा को न जाने– वहाँ तक वह अबुद्ध है। नहीं जाननेवाला, वह भी आत्मा है। यहाँ यह कहना है कि अज्ञान है, वह भी आत्मा है। अज्ञान पर से या पर के कारण से नहीं होता। अपनी ज्ञानानन्दमय वस्तु को न जाने और राग को आत्मा माने– ऐसा अबुद्ध भी आत्मा है, वह कोई जड़ नहीं है। अज्ञान, राग–द्वेष आदि जीव की पर्याय में होते हैं। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया, यह अपने से अपने को भूलकर हैरान होता है, किसी कर्म या पदद्रव्य से हैरान नहीं होता।

'भवभोगी' भव को भोगनेवाला भी आत्मा है, अतः उसे भवभोगी नाम दिया है। नरक, तिर्यंच मनुष्यादि भवों में जो विकारीभाव होते हैं, उन्हें भोगनेवाला आत्मा है, कोई जड़ उन्हें नहीं भोगता। अनुकूल–प्रतिकूल संयोगों में राग–द्वेष होते हैं उन्हें जीव भोगता है। रोग भले ही शरीर में आता है; परन्तु उसके प्रति के द्वेष के भाव को जीव भोगता है।

जैसे सिद्धपर्याय का भोक्ता जीव है, वैसे ही अज्ञानदशा में विकारी पर्याय का भोक्ता भी जीव है। विकार का भोक्ता जड़ नहीं है। आत्मा दाल, भात, रोटी, लड्डू आदि जड़ वस्तुओं को नहीं भोगता, परन्तु उनके प्रति होनेवाले राग को आत्मा ही भोगता है। मनुष्यगति अच्छी, देवगति अच्छी, नरक और तिर्यन्च गति अच्छी नहीं– ऐसी राग–द्वेष की पर्याय को जीव भोगता है। इसलिए कहा कि राग–द्वेषरूप भाव को भोगनेवाला जीव है।

गुनधारी– आत्मा ज्ञान, दर्शनादि अनन्त गुणों का धारक है, अतः वह गुणधारी है।

कलाधारी– ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि की कला का धारक होने से आत्मा को कलाधारी कहा है।

भेषधारी– त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से राग-द्वेष तो वेष है ही, किन्तु संवर-निर्जरा रूप धर्म भी वेष है। उस वेष का धारक होने से आत्मा वेषधारी हैं। शरीर, वाणी, मन का धारक आत्मा नहीं है।

देखो ! ये बनारसीदास, नाटक समयसार में जीव की इन सब नामों से पहचान कराते हैं।

विद्याधारी– आत्मा विद्या का धारक है। ज्ञान विद्या हो या अज्ञान विद्या हो, किन्तु उसका धारक आत्मा ही है।

अंगधारी– आत्मा को व्यवहार से शरीरधारी भी कहते हैं। अंग अर्थात् शरीर, उसके साथ आत्मा का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

संगधारी– आत्मा राग-द्वेष के संगवाला है अत: उसे संगधारी कहा है। कुटुम्ब-परिवार के संग को धरनेवाला नहीं, किन्तु राग के संग का धरनेवाला आत्मा है।

जोगधारी– मन, वचन, काया के निमित्त से जीव की अपने से हुई अपनी कम्पन की योग्यता को योग कहते हैं, उसका धारक आत्मा योगधारी है। योगी- योग को धरे, वह योगी। सच्ची दृष्टि से ले तो अपने निर्मल श्रद्धा-ज्ञान को धारण करके रहे वह योगी है। लोग कहते हैं कि योग करना, ध्यान करना परन्तु यह तो सब तो मिथ्या है। यहाँ तो वस्तु के भानसहित उसमें जुड़ान करके रहे, वह योगधारी है, वही योगी है। वस्तुस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान बिना किसका ध्यान करे ?इसतरह जो भोगी है, वही योगी है। जो पहले राग-द्वेष को भोगता था, तब भोगी कहलाया; वही जीव जब आत्मा के आनन्द को भोगने लगा, तब उसे योगी कहते हैं।

चिन्मय– आत्मा ज्ञानमय वस्तु है। जैसे शक्कर मिठासमय है, वैसे ही आत्मा चिद् अर्थात् ज्ञानमय है। अखण्ड-आत्मा असंख्यातप्रदेशी होने पर भी अखण्ड है, उसमें कोई खण्ड नहीं, वह अभेद है।

हंस- आत्मा अपने स्वभाव को और राग-द्वेष को भिन्न करने की ताकत रखता है, अत: उसको हंस की उपमा दी है। एक भजन में भी आता है कि 'मारो हंसलो नानो ने देवल जुनुरे थयु' अर्थात् यह शरीररूपी देवल पुराना हो गया है और मेरा हंस तो ऐसा का ऐसा है; उसमें कुछ बाल या वृद्धावस्था नहीं। हमने तो छोटी उम्र से ही बहुत भजन सीखे हैं। 'भगत' ही कहलाते थे, व्यापार करते हुए भी बहुत रस नहीं इसकारण लोग भगत कहते थे।

यहाँ कहते हैं कि राग-द्वेष-अज्ञान से हटकर अपने स्वरूप का अनुभव करे, उसको हंस कहते हैं और विशेष वीतरागता प्रकट करनेवाले को 'परमहंस' कहते हैं। हंस जैसे उज्ज्वल वस्त्र पहनने से हंस नहीं कहलाते।

अक्षर- आत्मा को क्षर अर्थात् नाश होनापना कभी नहीं है, अत: वह अक्षर है, अनादि-अनन्त है। लोग कहते हैं न, ये जीव अक्षरधाम में गया; किन्तु बाहर में कोई अक्षरधाम नहीं है। स्वयं राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर अपनी अविनाशी शक्ति को प्रकट करे, वही अक्षरधाम है।

आतमराम- जो अपने ज्ञानानन्द में रमे और विकार से हट जाये, ऐसे भावस्वरूप द्रव्य को आतमराम कहते हैं।

करम को करतार- आत्मा ही कर्म का कर्त्ता है अर्थात् भावकर्म का करनेवाला जीव स्वयं है, जड़कर्म जीव को विकार नहीं कराता। हिंसा, झूठ, चोरी आदि अशुभभाव और अहिंसा, सत्य, दया-दानादि शुभभाव का करनेवाला अज्ञानी आत्मा स्वयं ही है, आत्मा को जड़कर्म का कर्त्ता तो व्यवहार से कहते हैं।

परम विजोगी- शुद्ध चैतन्यघन आत्मा राग की क्रिया से परम वियोगी है। विकार का परम वियोगी, वह आत्मा है। इसप्रकार जीव के साधारण नाम कहे।

अब आकाशद्रव्य के नाम कहते हैं। शास्त्र में इस प्रकार भिन्न-भिन्न नाम आते हैं, वहाँ उसका अर्थ इसप्रकार जान लेना- ऐसी सूचना करते हैं। शास्त्र में एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न नामों से कहा गया होता है। *क्रमश:*

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
वीरनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव

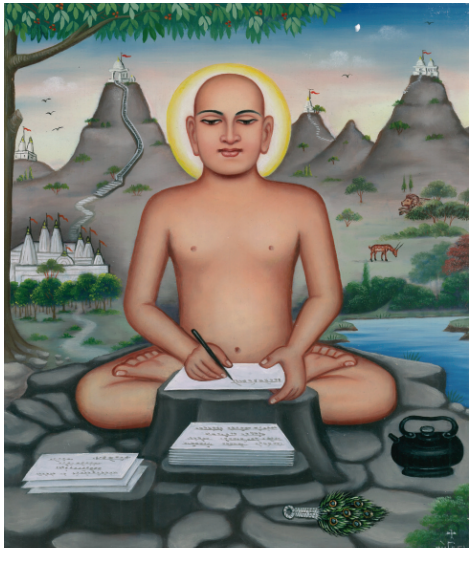

नन्दीसंघ देशीयगणानुसार श्री वीरनन्दी आचार्य मेघचन्द्र त्रैविद्य के शिष्य थे और पीछे विशेष अध्ययन हेतु आचार्य अभयनन्दि की शाखा में आए। आप आचार्य इन्द्रनन्दि व आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्तीजी के सहध्यायी थे। फिर भी ज्येष्ठ होने के कारण आपको आचार्य नेमिचन्द्रजी गुरु-तुल्य मानते थे।

आप जनसाधारण के मनोभावों, हृदय की विभिन्न वृत्तियों एवं विभिन्न अवस्थाओं में उत्पन्न होनेवाले मानसिक विचारों के सजीव चित्रणकर्ता महाकवि थे। आप स्वयं सिद्धान्तवेत्ता ही नहीं, परन्तु आप उसके मर्मज्ञ भी थे।

श्रवणबेलगोला के ४७वें शिलालेख से स्पष्ट है, कि आचार्य गुणनन्दि के ३०० शिष्य थे। उसमें से ७२ सिद्धान्त-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। इनमें देवेन्द्र सिद्धान्तिक सबसे प्रसिद्ध थे। देवेन्द्र सिद्धान्तिक के शिष्य कलधोतनन्दि या कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती थे।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोम्मटसार-कर्मकाण्ड ग्रन्थ में अभयनन्दि, इन्द्रनन्दि व वीरनन्दि इन तीनों आचार्यों को नमस्कार किया है। आचार्य वीरनन्दि के शिक्षागुरु अभयनन्दि, दादागुरु गुणनन्दि व सहाध्यायी इन्द्रनन्दि थे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आपके शिष्य या लघु-गुरुभाई प्रतीत होते हैं।

आपका 'चन्द्रप्रभचरित' काव्य-प्रतिभा का चूड़ात्व निर्देशन है।

आपका काल इतिहासकारोंनुसार ई. सं. ९५०-९९० है।

आचार्य श्री वीरनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव को कोटि-कोटि वन्दन!

मैं और मेरा जीवन-धन WhatsApp

— मङ्गलार्थी अनुभव जैन, पुणे

रोग पुराना, रूप नया है,
पर्यायों का मोह निरा है...
(निरा=बहुत, निरर्थक, निराला)
समझूँ नहीं, अरे समझाऊँ;
पढ़ूँ नहीं, अरे पढ़वाऊँ;
देखूँ नहीं, अरे दिखलाऊँ;
Likes Comments Share पा जाऊँ,
कितने ही ऐसे भावों में,
पर्यायों का **मोह** पला है ॥
रोग पुराना....
Post मेरा कितनों ने देखा,
पल-पल इसने **ध्यान** है खींचा,
किसने **चाहा,** किसने **टोका,**
अरे कोई भी क्यों नहीं **बोला ?**
इन **विकल्प** के अंतस् में क्या,
पर्यायों का मोह खरा है ?
रोग पुराना....
Post कोई मुझको **भा** जाये,
सारे ही group में **छा** जाए,
आगे पीछे बिना विचारे,
धैर्य सुसुप्त, रु मूक खड़ा है,
करने-धरने के भावों में,
पर्यायों का **अहं** पड़ा है ॥
रोग पुराना....

कुछ भी नहीं नया है इसमें,
अरे ! पता है मुझको यह सब,
कर scroll **नया** कुछ ढूँढो,
नये के आगे **सत्य** दबा है,
नव ज्ञेयों के **शोधन** में क्या,
ज्ञेयों के प्रति **लोभ** पड़ा है ?
रोग पुराना....
Depression, Frustation पाला,
अब रोगों ने घेरा डाला,
Comments, Likes की **तृष्णा** जागी,
नहीं मिले तब **व्याकुल** भारी,
मान-दीनता के कुचक्र में,
बुद्धि-कोष अविराम छला है।
रोग पुराना....
दश लोगों तक इसको भेजो,
मनोकामना पूरी होगी,
नहीं भेजा तो **महा-अनिष्ट,**
घर में अरे ! गरीबी होगी,
अंधी श्रद्धा की वेदी पर,
Common-Sense बलि चढ़ा है,
रोग पुराना...
Social-Media के आगे,
जीवन का **हर रस** फीका,
भूख प्यास मैं सब सह सकता,

Net नहीं तो जीवन **रीता,**
प्राण प्रतिष्ठा जड़ यंत्रों में,
ममता का **षड़यंत्र** घना है,
रोग पुराना....
जिन दर्शन, स्वाध्याय बिना ही,
ना जाने कितने दिन बीते,
WhatsApp दर्शन बिन मैंने,
ना **जल-बिन्दु** ना **कौर** चखा है,
समय नहीं, मैं busy हूँ,
सोचूँ... ! किसमें **समय** गया है ?
रोग पुराना....
क्या **अभिप्राय** लिये है वक्ता ?
समझ बिना ही **विवाद** खड़ा है,
शब्दों की अपनी सीमा है,
स्याद्वाद इसलिए **ध्वजा** है,
मिथ्या-एकान्तों को रख कर,
पक्षपात अवछिन्न चला है,
रोग पुराना....
रचकर अच्छी-सच्ची कविता,
रख ना पाया क्यों मैं **समता ?**
परम्परा परिणाम विचारी,
अभिप्राय में वही **वासना,**
गहरी इन मिथ्यात्व जड़ों हित,
कहने का **पुरुषार्थ** गढ़ा है,
रोग पुराना रूप नया है,
पर्यायों का मोह निरा है....

वैराग्यसमाचार

दिल्ली : श्री सुरेशचन्दजी का शारीरिक अस्वस्थता के कारण देहपरिवर्तन हो गया है। आप अमित जैन के ससुरजी थे।

जबलपुर : श्री नेमीचन्द जैन पायलवाला का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामों से हो गया है। आप गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत थे। आपका तीर्थधाम मंगलायतन से विशेष लगाव था।

इन्दौर : श्री प्रदीपकुमार सिंह कासलीवाल का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामों से हो गया है। आप दिगम्बर जैन समाज के आधार स्तम्भ थे।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

समाचार-दर्शन

दशलक्षण महापर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में दशलक्षण महापर्व उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुए।

दैनिक कार्यक्रम – प्रातः 6.45 से 9.00 बजे तक प्रक्षाल, पूजन विधान, 9.15 से पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, तत्पश्चात् विभिन्न मङ्गलार्थी अनुभव त्रय, पूना, करेली, जबलपुर; ज्ञायक जैन बैंगलोर; शान्तनु जैन, नोएडा; अनाकुल जैन, अलीगढ़; ज्ञाता जैन, सिवनी; शुद्धात्म जैन, भीलवाड़ा आदि छात्रों द्वारा स्वाध्याय, तत्पश्चात् पण्डित अच्युतकान्त शास्त्री, जसवन्तनगर; ब्रह्मचारी रविन्द्रजी आत्मन, पण्डित विमलदादा झांझरी, उज्जैन; बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; डॉ. मनीष शास्त्री, मेरठ; डॉ. सुनील शास्त्री, राजकोट; पण्डित शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल आदि विद्वानों विदुषी मुक्ति जैन, द्वारा ऑनलाईन स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

दोपहर में 2.45 से अध्यात्म पाठ, 3.15 से पण्डित सचिन जैन द्वारा समयसारजी पर कक्षा का लाभ मिला।

सांयकालीन भक्ति 6.30 से 7.15 तक ऑनलाईन नैरोबी मुमुक्षु मण्डल, आरोन, करेली, राजकोट, मकरोनियां सागर, पिड़ावा आदि मुमुक्षु मण्डल एवं मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा भक्ति का आयोजन किया गया।

रात्रि में शुरु के पाँच दिन 7.15 से 8.00 तक पण्डित अशोक लुहाड़िया का मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष लाभ मिला। अन्त के पाँच दिनों में डॉ. सचिन्द्र शास्त्री के स्वाध्याय का प्रत्यक्ष लाभ मिला।

इसी दौरान रात्रि 8.15 से 9.15 तक ऑनलाईन के द्वारा विशेष वक्ता के रूप में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन, खनियांधाना; पण्डित अभयकुमारजी देवलाली; डॉ. संजीव गोधा, जयपुर; पण्डित राजेन्द्र जैन, जबलपुर; पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां; बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन आदि का लाभ प्राप्त हुआ।

मङ्गलायतन के सूत्रधार श्री पवन जैन, अलीगढ़ द्वारा ब्रह्मचर्य धर्म पर विशेष स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

हजारों लोगों ने दशलक्षण महापर्व का ऑनलाईन लाभ लिया। ऑनलाईन व्यवस्था में मङ्गलार्थी सौधर्म लुहाड़िया, ऋषभ जैन, संकेत जैन, माईकल यादव, अजय जैन आदि का विशेष सहयोग रहा।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	HDFC BANK
BRANCH	:	RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	HDFC0000380
PAN NO.	:	AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, निःशुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

तीर्थधाम चिदायतन के बढ़ते चरण

मुनिराज को वस्त्र-ग्रहण की वृत्ति क्यों नहीं ?

जहाँ अतीन्द्रिय चैतन्य का उग्र स्पर्शन-अनुभव किया, वहाँ इन्द्रियों के विषय जीत लिये गये। अतीन्द्रिय चैतन्य के स्पर्श द्वारा बाह्य में स्पर्शन इन्द्रिय का सम्पूर्ण विषय जीत लिया गया है; इसलिए मुनिराज को शरीर पर वस्त्र धारण की वृत्ति ही नहीं होती – ऐसी निर्ग्रन्थ मुनिदशा होती है।

[आत्मधर्म, (गुजराती) वर्ष 27, अङ्क 314, पृष्ठ 18]

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

प्रचुर वीतरागता के धनी

सर्वत्र वीतरागता ही जैनधर्म है। अविरत सम्यग्दृष्टि हो, देशव्रती श्रावक हो अथवा सकलव्रती मुनिराज हों, सर्वत्र भूमिका के योग्य शुभभाव होने पर भी परिणति में जितनी वीतरागता परिणमित है, उतना धर्म है; साथ में वर्तनेवाला शुभराग, वह कहीं धर्म अथवा धर्म का परमार्थ साधन नहीं है। सुख निधान निज ज्ञायकस्वभाव में रमनेवाले मुनिराज को भी अभी पूर्ण वीतराग-सर्वज्ञदशा प्रगट नहीं हुई है, पूर्णदशा तो अरहन्त परमात्मा को प्रगट हुई है। पूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं होने पर भी मुनिराज को वीतरागस्वभावी निज ज्ञायक भगवान के उग्र आलम्बन से प्रचुर वीतरागता उत्पन्न हुई है।

(वचनामृत-प्रवचन, भाग-४, पृष्ठ १२६)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com